रेत के घर

लेखक : दामोदर मावजो

अनुवादिका : चंद्रलेखा डि'सौझा

सुबह जब आंख खुलती है तब सात बज चुके होते हैं. एक और सवेरा. एक और नया दिन.

मेरे घर के पास ही एक छोटा-सा चर्च है, रोज सुबह की प्रार्थना मेरे कानों में गूंजती है, लाउडस्पीकर के कारण मैं उसे अपने घर में सुन सकता हूं. मैं सोचता हूं.

प्रभु ने मुझे एक और दिन ज़िंदा रखा है इसलिए प्रभु का भला हो... भगवान को ही कहना कि भगवान का भला हो, इस बालिश कल्पना से ही मैं हंस पड़ता हूं. मैं जब मेडिसिन में पढ़ता था तब हमारे कार्डियोलोजी के प्रोफेसर का चलते-फिरते ही हार्ट फेल हो गया और वे चल बसे. मुझे भी आश्चर्य हुआ. एक डॉक्टर की मृत्यु इस प्रकार हो, यह कोई मामूली बात नहीं. पेशेंट डॉक्टर के पास इलाज करवाने आये और उसे पता लगे कि खुद डॉक्टर साहब बुखार में तप रहे हैं तो बीमार की क्या गत होगी? उसे अपने डॉक्टर पर, उसके इलाज पर, विश्वास कम न होगा? यह भी सच है कि डॉक्टर भी इंसान ही है. पर बुढ़ापे के कारण, ज़्यादा उम्र के कारण, सोते हुए मुंह पर हंसी लिये हुए... इस प्रकार की मृत्यु ही डॉक्टर को शोभा देती है.

यह सब सच है. पर मेरे जैसा कमनसीब भी डॉक्टर हो सकता है. अभी चालीस साल पूरा करने में भी तीन साल बाकी हैं, तब ऑस्टिओजेनीक सार्कोमा जैसा असाध्य कैंसर मुझे क्यों छल रहा है? भगवान का भला हो जैसी ही बात लग रही है!

"उठ गये?" शामी आकर पूछती है.

अपने निःश्वास को रोककर मैंने जम्हाई का बहाना बनाया और उस निःश्वास को बाहर आने की राह दे दी.

"छिः! भारतीय खिलाड़ियों ने तो सत्यानाश ही कर दिया."

शामी के इन उद्‌धरणों के साथ मुझे याद आ जाता है, आज से क्रिकेट मैच शुरू हो रहा है. सुबह साढ़े पांच बजे ही कॉमेंट्री आनेवाली थी. सुबह भाग-दौड़ न मचे इसलिए शामी ने कल ही रेडियो के सेल्स मंगाकर रखे थे... खास मेरे लिए.

"क्या स्कोर हुआ?" मैं मन लगने का बहाना करके पूछ रहा हूं.

"भारत खेल रहा है. गावस्कर ज़ीरो पर आउट. तथा स्कोर अभी तक सौ भी नहीं हुआ है—पांच खिलाड़ी आउट"

"डैडी अब कपिल देव खेलने आ रहा है, देखते हैं—" मेरे इस नौ साल के बेटे अजय को मुझसे भी ज़्यादा क्रिकेट का शौक है और कपिल देव तो इसका 'फेवरिट' है.

"मैं जल्दी जगा नहीं, अच्छा ही हुआ." हंसते हुए मैंने कहा.

"मैंने जगाया था, पर आप जागे नहीं इसलिए फिर नहीं जगाया." शामी ने कहा.

जागेंगे भी कैसे? रात्रि के डेढ़ बजे तो सोये. मैं चकराया. क्या शामी को पता है? मेरी तरह वह भी अंधेरे में खुली आंखों से नींद का बहाना करके सोयी थी क्या?

"उठ रहे हैं ना? मुंह धोइए तब तक चाय तैयार हो जायेगी." शामी अंदर के कमरे में गयी.

हुंः! अब सब मेरी चिंता कर रहे हैं. शामी तो मेरी धर्मपत्नी है. उसे तो मेरी

दामोदर मावजो

जन्म
1944

कृतियां
'गांथन' और 'जागरणां' (कहानी संग्रह)

•

बच्चों के लिए भी कहानी-लेखन उपन्यास 'कार्मेलीन' को 1984 में साहित्य अकादमी पुरस्कार

संपर्क
माजोरडा—गोआ-403713

चिंता होनी ही चाहिए. अब तो पास-पड़ोसी भी मेरी चिंता से परेशान होते हैं.

चादर फेंककर उठने लगा तो छोटी मुन्नी का हाथ, मेरे गले में पड़ा था वह रोकने लगा. इसे तो बस आदत ही पड़ी है, ड्डैडी को चिपक के सोने की. उसकी इस आदत को अब तो भुलाना चाहिए. मैं आहिस्ता मुन्नी का हाथ हटाता हूं. अब तो ये बंधन आहिस्ता-आहिस्ता छोड़ने ही चाहिए. मुंह धोता हूं और चाय पीने बैठता हूं. स्टीरियो पर मेरी मनपसंद कैसेट बज रही है. बिसमिल्ला खां की शहनाई. रोज़ तो ये स्वर कानों में पड़ते ही मैं तरोताज़ा महसूस करता था, पर आज मुझे इन स्वरों में निराशा का आभास होता है. मैं जानता हूं यह निराशा मेरे ही दिल का गुबार है. मेरे दिल के नैराश्यपूर्ण विचार शहनाई के स्वरों में मिल-जुल गये हैं तभी तो आज

आज का काम कल पर नहीं छोड़ना चाहिए, यह हम सब जानते हैं—सुनते हैं, पर किसी ने भी आज का काम कल पर छोड़ना बंद नहीं किया. कल के लिए धन संचय करना छोड़ा नहीं. कल की प्लानिंग करना बंद नहीं किया.

कल एक और कल आयेगा और फिर एक और... और कितने सारे कल... न आनेवाले कल... असंख्य...

मेरी बात ही अनोखी है. पूरा संसार जिससे डरता है वह प्रख्यात 'कैंसर' मुझ पर मेहरबान हुआ है. मेरे कल, ज़्यादा नहीं बचे हैं, इसीलिए कम-से-कम आज के काम कल पर छोड़ना मेरे लिए बे-बुनियाद है.

पर क्यों? कल अगर मैं रहनेवाला ही नहीं तो फिर आज का काम भी मुझे क्यों करना चाहिए?

"अरु कल हम मंगेशी के मंदिर जाकर आयेंगे?" शामी आकर पूछती है.

ये सभी मुझे मिलने आते हैं पर क्या बात करें वे उनकी समझ में आता नहीं इसलिए मूक हो जाते हैं. ये मूक क्षण जैसे खाने को आते हैं, फिर मैं ही कुछ पूछकर मौन भंग करता हूं.

पर इस समय मैं चुप हूं, देखता हूं, कब तक यह चुप बैठता है. अंत में थोड़ा ठीक बैठकर सावधानी ही पूछता है, "कैसे हो?"

निराशा का आलम पसर रहा है. दिल में भैरवी राग के स्वर और शहनाई पर ललित स्वर—कैसे मिल सकते हैं? पर यह बात मेरी पत्नी शामी को मालूम न हो. वह तो मुझे सुख देने के लिए अपनी ओर से सब प्रयत्न करती है. मैं टेबल पर उंगलियों की ताल देकर रोज की तरह प्रसन्न दिखने का दिखावा करता हूं—शामी की खातिर.

शामी चाय खत्म करती है. मैं अपनी चाय खत्म करने के लिए कप को हाथ लगाता हूं, अचानक हाथ कांपता है, कप उल्टा हो जाता है और चाय गिर जाती है. शामी पोंछने का कपड़ा तेजी से लाती है और साफ कर देती है.

"और लाऊं?"

"नहीं मुझे चाहिए ही नहीं."

शामी की चाय सब खत्म हो गयी. मेरी चाय बीच में ही क्यों गिर गयी? जैसे मेरे आयु का प्रतीक हो!

हां. जो जन्म लेता है, मरता ही है, पर हर कोई दिन गिनने नहीं बैठता.

मुझे हंसी आती है. शामी मंदिर और भगवान के पीछे कब से लग गयी? अकसर भगवान और भगवद भजन के मामले में व्यंग्य करनेवाली शामी...

"तुम हंसो मत—हूं. पहले ही बोल रही हूं. किसलिए मंदिर जाना है यह भी नहीं पूछना."

मैं सिर हिलाता हूं, पर फिर भी शामी नाशाद मन से जाते-जाते बोलती है, "जिसका कुछ खो जाये उसका मन दस जगहों में."

"शामी तुम खोयी नहीं हो. अजय है, मुन्नी है. तुम्हें तो खोना ही नहीं चाहिए. अरे संसार ऐसा ही तो है. घर में पता ही नहीं होता और सिर्फ अकस्मात में रोज़ाना कितने लोग मरते हैं, जानती भी हो?"

"मुझे नहीं सुननी, वे सब बातें." शामी ने रुंधे गले से कहा, "वैसे आंकड़ों में तो मैं भी नहीं जानता. पर उन लोगों की तुलना में हम नसीबवाले हैं ऐसा समझा. ...शामी, नो टिअर्स प्लीज! अरे, तुम... तुम अनाड़ी नहीं हो, कितनी बार मैंने तुम्हें समझाया है."

"अरु प्लजी! तुम्हारी तरह, मेरा कलेजा सबकुछ बर्दाश्त करने का आदी नहीं है. पर आइ विल ट्राइ एंड बिहेव!"

"दैट्स लाइक एक गुड गर्ल." शामी के बालों में हाथ फेरते हुए मैंने कहा.

वैसे तो शामी स्वाभिमानी है, किसी के आगे झुकनेवालों में नहीं. पर कभी-कभी बचपना करती है. हायर सेंकडरी स्कूल की लेक्चरर की सोने जैसी नौकरी छोड़ दी. मुझे पूछा तक नहीं. बताया भी नहीं.

पंद्रह दिन पहले की बात याद आती है— रोज सुबह कॉलेज में जानेवाली वह, उस दिन सुबह घर में ही रही. पूछने पर बताया कि मैंने नौकरी छोड़ दी.

मैं चौकन्ना हो गया.

"शामी, तुम पागल हो गयी हो? मुझसे मशवरा तो करना था."

"तुम क्या मुझे नौकरी छोड़ने देते?"

अर्थात् नहीं. "अब नौकरी छोड़कर क्या करोगी तुम?"

"घर में रहूंगी."

"इडियट! इतने साल अगर नौकरी न करती तो किसी का नुकसान न हुआ होता, अब छोड़ दी? —जब तुम्हें नौकरी की ज़्यादा आवश्यकता है."

"आज मुझे नौकरी की आवश्यकता नहीं है, घर में रहने की है." शामी ने ठंडेपन से जवाब दिया. "आज नहीं है, कल जरूरत होगी. तुम आज का सोचती हो. कल के लिए कुछ सोचो, बच्चों के लिए कुछ सोचो."

"तुम अनावश्यक दिमाग खराब कर रहे हो, अरु! मैंने सब तरह से सोचकर ही फैसला किया है. लेक्चररकी नौकरी कभी भी मिल सकती है.

वैसे शामी हर काम सोच समझकर ही करती है. विवेकी भी है, पर बहुत ज़िद्दी है.

"डॅडी, डॅडी आठ आउट!" अजय फिर कामेंट्री में तल्लीन हो गया है.

"बंद कर उस कामेंट्री को. सुबह ही सुबह मूड ऑफ कर दिया. जो थोड़ा बाकी है वह भी अब चला जाएगा."

सच पूछो तो मैं डॉक्टर होते हुए भी, क्रिकेट की कामेंट्री के दिनों में, अस्पताल जाना भी गोल कर देता था. शामी ने इसीलिए नये बेटरी सेल लाकर ट्रांज़िस्टर तैयार रखा था. खास मेरे लिए. पर पांच पकवानों की भरी थाली समक्ष होते हुए भी मुंह में कोई रुचि ही नहीं रही थी. अब उन मोहन भोगों का क्या काम?

अखबार लेकर बैठता हूं, पर पढ़ नहीं पाता. रोज़ की तरह मुख्य समाचार,

अग्रलेख, खेल समाचार पर नज़र घुमाकर अब मेरी दृष्टि सिनेमा के विज्ञापन देखती है. अचानक मेरी आंखें चमक उठीं. 'आनंद' पिक्चर लगी है. मैंने पांच-सात साल पहले देखी थी. खूब अच्छी लगी थी. मृत्यु की राह देखता हुआ, बचे हुए दिनों में दूसरों को आनंदित करता हुआ 'आनंद'.

आज मैं ही आनंद बन गया हूं.

यह फिल्म आज देखनी ही है. उस समय अच्छी लगी थी, देखें इस बार अच्छी लगती है कि नहीं? देखनी ही चाहिए. मैं शामी को आवाज लगाता हूं. अनजाने में ही मेरे दिल की बेताबी मेरी आवाज में मिल गयी है, मैं फिर आवाज देता हूं.

शामी दौड़कर आती है.

"क्या हुआ?" उसकी भयभीत आवाज सुनकर मैं हंस पड़ता हूं.

"देखो कितनी डर गयी?" मैं हंसता हूं.

गेनी आवाज़ में शामी वापस जा रही है. "मज़ाक बंद करो, क्यों बुलाया था?"

"आज हम पिक्चर देखने जायेंगे."

सिनेमा का नाम सुनते ही शामी, मेरी नज़रों से नज़रें मिलाती है, जैसे मुझे जांच रही हो, क्षण के लिए मौन हो जाती है

भरी हुई आवाज़ में पूछती है, "कौन सी फिल्म?" शामी जानती है, आनंद लगी है.

"आनंद."

शामी अपना होंठ दांतों में दबाने जाती है. मुझे पता लग जायेगा इसलिए इरादा बदल लेती है. सिर्फ सिर हिलाकर ना करती है. बाद में निर्णय करते हुए कहती है, "नहीं, और कोई भी सिनेमा देखेंगे पर, प्लीज जिद न करना. मैं नहीं देख सकूंगी. और तुम भी न जाना."

"ओ.के. शामी ड्राप इट. अरे, मैंने तो यूं ही कहा था. फॉर गेट इट. और देखो, इतनी भावुक न बनो, तुम्हारे लिए अच्छा नहीं है."

शामी पीछे मुड़े बिना अंदर चली जाती है.

उसकी अस्वस्थता देखकर मैं अस्वस्थ हो जाता हूं. वह किस असमंजस में पड़ी है मैं समझ सकता हूं. सही है मैं भाग्यशाली हूं. जो हुआ सो मुझे हुआ है, अगर शामी को यही बीमारी लगती तो मेरा क्या हाल होता यह सोचने की आवश्यकता नहीं है, इस शामी को देखकर अंदाज़ा लगाना मुश्किल नहीं.

बेल बजती है.

डॉ. सावयकार आते हैं. हम साथ पढ़े हैं. अब वे बम्बई में रहते हैं.

"तुम कब आये?" मैं पूछता हूं.

कल ही. सावयकार उत्तर देता है. आगे कुछ नहीं बोलता. ये सभी मुझे मिलने आते हैं पर क्या बात करें ये उनकी समझ में आता नहीं इसलिए मूक हो जाते हैं. ये मूक क्षण जैसे खाने को आते हैं, फिर मैं ही कुछ पूछकर मौन भंग करता हूं.

पर इस समय मैं चुप हूं. देखता हूं, कब तक वह मूक बैठता है. अंत में थोड़ा ठीक बैठकर सावयकार ही पूछता है, "कैसे हो?"

"फाइन" रोज की तरह जवाब दे देता हूं.

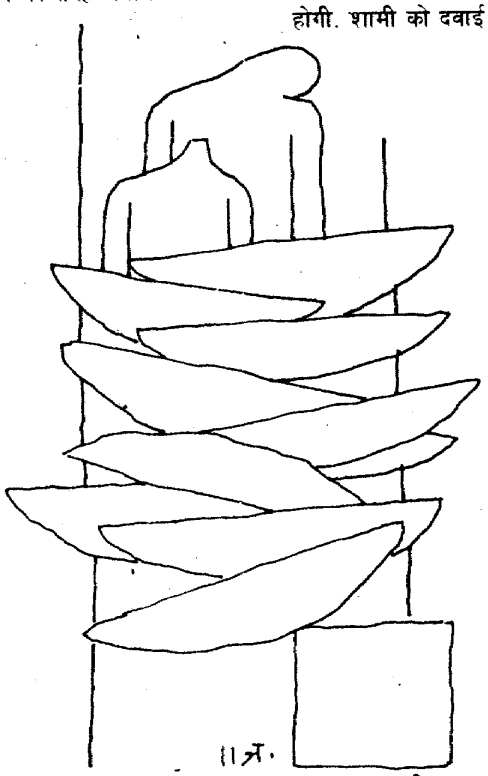

सावयकार फिर मौन हो जाता है. अब मुझसे रहा नहीं जाता. हंसकर मैं ही पूछता हूं, "मेरा हालचाल पूछने आये हो ना? तो फिर पूछो ना." सावयकार को लगता है मैं व्यंग्य कसता हूं. वह मुझे अनिमेष देखता है और अचानक जैसे राह मिल गयी हो, वैसे सरलता से हंसता है, "तुम वैसे ही हो"– फिर गंभीर होकर कहता है, "मैंने बंबई में ही सुना था, विश्वास नहीं हुआ, अरुण तुमने यह पागलपन ही किया. बंबई आना चाहिए था. मैंने तो टाटा मेमोरियल में बोलकर भी रखा था कि तुम आओ तो मुझे खबर कर दें."

"थैंक्स! एंड फॉरगेट इट. मैं भी भूलना ही चाहता हूं. पेशेंट होकर मैं जीना नहीं चाहता."

"कोई भी आदमी अपनी इच्छा से पेशेंट होना पसंद नहीं करता."

"आइ नो, आइ नो. ऐसी इच्छा होती तो मैं बंबई ही क्यों अमेरिका भी होकर आता. पर तुम जानते हो? यह हड्डियों का कैंसर है और लास्ट स्टेज में."

"सुना, बहुत बुरा लगा. पर अरुण, आश्चर्य एक ही बात का होता है.... तुम इतने अंधेरे में कैसे रह गये?"

"नसीब? ऐसा हीं होना था. अरे कुछ नहीं था, कमर में थोड़ी सी सूजन थी, यही निमित्त था. सोचा था, सादी गांठ ही होगी. शामी को दवाई घिसने के लिए भी कहा, थोड़ा अच्छा लगा और चुप रहा."

"फिर?"

"गत माह में एक पेशेंट के केस के सिलसिले में रायकर की एक्स रे क्लिनीक में गया था. मज़ाक ही मज़ाक में सोचा स्क्रीनिंग करके देख लिया जाये, रायकर ने उन्हीं दिनों नयी मशीनरी खरीदी थी. छाती का स्क्रीनिंग देखकर रेडियोलॉजिस्ट डर गया, एकदम से परेशान हो गया. लिटरली स्टन्ड. उसी समय उसने एक्स-रे भी निकाला, मेरे सामने उसे प्रोसेस किया, दोनों फेंफड़ों में केंसर फैल चुका था. सपने में भी सोचा न था... बट इट वाज टू लेट." बोलते-बोलते ऐसा लगा जैसे मैं खुद बह रहा हूं.

"अरे, पर तुम निराश होकर क्यों जी रहे हो? विज्ञान ने कितनी तरक्की की है, मैडिकल सायन्स अब बहुत आगे निकल चुका है. पच्चीस साल पहले केमो थेरेपी हमारे यहां कहां थी? नयी-नयी खोज होती रहती है. यू ऑट टु हैव टेकिन ए चांस."

"ये सब बातें एक पेशेंट को कहने के लिए ठीक हैं, एक डॉक्टर को ऐसा खोखला बहाना देना आसान नहीं है."

मैं हंसकर कहता हूं, "सच-सच बताना अगर मैं बंबई आता भी तो क्या केंसर ठीक हो जाता? मेरे दोनों लंग्स में मेटूस जमा हो चुके हैं, उसका इलाज ऑपरेशन ही है ना? और वह भी मेजर? और टेंपरेरी! उसकी बजाय बाकी के बचे हुए दिन हंसते-खेलते गुजारना भी बेहतर है. माइ डेज़ आर नंबर्ड और वह भी मैं अपंग होकर क्यों गुजारूं?"

सावयकार के पास जवाब नहीं है. शामी चाय लेकर आती है.

आजकल शामी कुछ-न-कुछ मेरी पसंद का बनाती ही है, और मुझे परोसती है. मैं खाता हूं. सच कहूं तो पहले की तरह अब खाने में चाव भी नहीं रहा, भूख लगती है पर पेट और जिव्हा में कोई तालमेल नहीं रहा. लगता है जिव्हा का स्वाद और उसका चैतन्य दोनों गायब हैं, फिर भी मैं खाता हूं, शामी को अच्छा लगेगा इसलिए सबकुछ निगलता हूं.

"पकोड़े कैसे बने हैं?" शामी पूछती है.

"एक्सलेंट? पर सच बताऊं शामी— रोज़ तुम कुछ न कुछ स्वादिष्ट, रसीला पकाकर परोसती हो... अब एक दिन कभी कम नमकवाला खाना पकाओ, कभी ज़्यादा नमक डालकर पकाओ, कभी स्वादहीन खाना भी बनाओ तो मज़ा आ जाये. कभी दाल, कभी लाल कोकम की कढ़ी बनाकर भी परोसो. रोज़-रोज़ मन-पसंद खाना खाकर मैं तो ऊब गया."

"पकोड़े कैसे बने हैं?" शामी पूछती है.
"एक्सलेंट? पर सच बताऊं शामी—रोज़ तुम कुछ न कुछ स्वादिष्ट, रसीला पकाकर परोसती हो... अब एक दिन कभी कम नमकवाला खाना पकाओ, कभी ज़्यादा नमक डालकर पकाओ, कभी स्वादहीन खाना भी बनाओ तो मज़ा आ जाय. कभी दाल, कभी लाल कोकम की कढ़ी बनाकर भी परोसो. रोज़ रोज़ मन-पसंद खाकर मैं तो ऊब गया."

"आप कब आये?"

"कल ही."

और कुछ बोले बिना वह चाय का घूंट पीता है, शामी थोड़े समय के लिए रुकती है, अंदर चली जाती है.

उसके जाने के बाद सावयकार पूछता है, "इसकी मनोदशा कैसी है?"

मैं झूठ बोलता हूं, "अरे नहीं रे, मैंने उसे पूर्णतया समझा दिया है. जो भी होने वाला है उसका मुकाबला करने के लिए मैंने उसे सब तरह से प्रिपेयर्ड किया है."

सावयकार जाता है. मैं जानता हूं मन-ही-मन वह मेरी प्रशंसा किये और बगैर नहीं रहेगा.

अपनी मृत्यु का सामना हंसते हुए करने की कल्पना से ही मुझे अच्छा लगता है. मन में क्षणिक उत्साह संचार होता है.

पकोड़े तलने के बाद शामी मुझे खाना खाने बुलाती है. छोटी-छोटी मछलियों के पकोड़े बनाये हैं. मेरी मन-पसंद चीज है.

शामी हंसती है.

"और एक बात कहूं?" मैं पूछता हूं.

"क्या है?" शामी भौंहें चढ़ाकर पूछती है.

"पहले की तरह कभी-कभी मेरे साथ नोंक-झोंक भी करती रहो."

शामी चुप रहती है.

सचमुच जब से बीमारी का पता लगा है, घर का वातावरण ही बदल गया है, जैसे बेजान हो गया है. न वाद-विवाद, प्रतिवाद, संभाषण सबकुछ बेजान और शांत. हर कोई मुझे खुश करने का प्रयत्न कर रहा है.

इतने में अजय और मुन्नी मुझे आकर चिपकते हैं, "डैडी, आज हमें समंदर किनारे जायेंगे?"

मैं शामी की तरफ देखता हूं, शामी मेरी तरफ देखती है. शामी चाहे तो मैं जाने के लिए तैयार और मैं चाहूं तो शामी तैयार.

"यस चलेंगे."

मेरे शब्द उनके कानों पर पड़े नहीं कि दोनों खुशी से झूम उठते हैं और जैसे दौड़कर मेरे पास आये थे वैसे ही भागकर बाहर जाते हैं.

समंदर किनारे जाने की कल्पना से ही मन में जैसे ताज़गी का अनुभव होता है. घर की चारदीवारी की बजाय समंदर का मुक्त आह्लादक पवन शायद मन को प्रसन्नता से भर दे.

खाना खाने के बाद मैं ज़रा लेटता हूं. नींद नहीं आती. अनजाने में ही हाथ कमर को छूता है, सूजन जैसी थी वैसी ही है. न घटी है, न बढ़ी है. कल-परसों तक तो पता भी नहीं लगा था. अब तो वह मृत्यु का एक चिन्ह बन चुकी थी.

डॉक्टर होते हुए भी मैं पहचान न पाया. एम.डी. होते हुए भी....

कितने बड़े-बड़े सपने देखे थे मैंने. साल दो साल में अमेरिका जाऊंगा... वापस आकर खुद का क्लिनिक खोलूंगा.... अजय, मुन्नी को खूब पढ़ाऊंगा.... और अब? सब कुछ तहस नहस हो गया.

मैंने कैरियर बनाने के लिए भी कितनी तकलीफें उठायीं? सब बेकार. मैं अक्सर कहा करता था... कैरियर और पत्नी अगर मन-पसंद मिल जाय तो मनुष्य अपनी ज़िंदगी आसानी से, सुख-चैन से गुज़ार सकता है. उस समय एक बात भूल गया था, सेहत. डॉक्टर होते हुए भी भूल गया था. और शामी? हमारा प्रेम-विवाह हुआ था. किसी का भी विरोध नहीं था. अगर हमारी शादी में ही किसी ने विघ्न डाला होता तो शायद आज शामी सब त्रासदी से बच जाती...

अजय मेरा बड़ा लड़का.... लड़का किसी भी तरह निर्वाह कर लेगा.... चिंता है तो मुन्नी की. मुन्नी को सहारे की आवश्यकता थी. कम-से कम मेरी मुन्नी को तो सहारा चाहिए ही. ज़्यादा नहीं तो थोड़े वर्षों तक.

इस फ्लैट के दाम बहुत सारे चुकता हो गये हैं. एक साल में सबकुछ चुकता हो जायेगा. अब मेरे बाद मेरे इंश्योरेंस में से चुकता हो जायेगा. ....कितने समय तक मैं सोचता रहा... पता नहीं. जितना अब तक किया सब व्यर्थ गया. भविष्य के बारे में सोचा था वह रेत का महल ढह गया. मेरे इन विचारों से मस्तिष्क चकरा जाता है.

शामी आकर मेरा माथा छूती है मैं डर जाता हूं.

"तुम हो?"

"आपको कौन लगा था?" शामी हंसती है, लगता है वह अनचाहा हंसती

है, दिखावा करती है, मन बहलाने का बहाना खोजती है.

"समय क्या हुआ? पांच बज गये क्या?" एकदम से मैं उठ बैठता हूं.

"कब के पांच बज चुके. अब तो बच्चे भी शोर मचाने लगे हैं."

"चलो फिर चलते हैं."

शामी बच्चों को बुलाती है, कपड़े बदलने के लिए कहती है. मैं भी चाय पीता हूं, कपड़े बदलता हूं, गाड़ी बाहर निकालता हूं. समंदर किनारे पहुंचते-पहुंचते छः बज जाते हैं.

अजय छोटी-सी बाल्टी, नन्हा सा फावड़ा और प्लास्टिक का कप लेकर आया है— समंदर किनारे रेत में खेलने के लिए उल्लास से. मुन्नी भी उत्साहित है. हवा खाने आये हुए लोग भी प्रसन्नचित्त घूम रहे हैं. आसपास के वातावरण में चैतन्य दिख रहा है. मेरी मनोदशा बर्फ-सी शीत हो गयी है. समंदर की लहरें, लहरों का संगीत, हवा की ताज़गी भी मुझे तरोताज़ा नहीं कर सकती. मेरा मन किसी भी चीज में लगता नहीं है. बस थोड़े दिन और.... मैं यहां नहीं पहुंच पाऊंगा, मैं रहूंगा ही नहीं. यह समंदर, उसका संगीत यह सूर्य, इन सबसे दूर.... प्रकृति से दूर.... अनंत प्रकृति के साथ दूर....दूर...... उस पार..... अनजान....

यह गाड़ी, वह फ्लैट, फ्लैट में फ्रिज, स्टिरिओ.... सबकुछ..... छोड़कर....

मेरी शामी.... मेरा अजय.... मेरी मुन्नी.... सब मेरे अपने यहां रहेंगे, पर मैं ही... सिर्फ मैं ही नहीं रहूंगा.

अपने मस्तिष्क को झटका देकर मैं आगे चलता हूं. शामी को लोगों की भीड़ पसंद नहीं, शोर से दूर.... शांत जगह पर बैठना उसे भाता है. हम दूर जाकर बैठते हैं.

अजय और मुन्नी बेतहाशा खेलने लगते हैं.

शामी की गोद में सिर रखकर मैं लेट जाता हूं. मेरी दृष्टि शामी के मुख पर स्थिर होती है. कितनी सुंदर दिखती है? सूर्यास्त की लालिमा और उसकी किरणें शामी के रक्तिम मुख से जैसे होड़ रचती हैं— अचानक मेरी दृष्टि शामी के भाल के रक्ताभ सूर्य पर स्थिर होती है, प्रकृति का सूर्य स्थिर भी-अस्थिर भी, तभी तो शाम के समय एक तरफ से अस्त होता है और दूसरे दिन फिर उदित होता है, पर मेरी शादी का रक्ताभ सूर्य, यह चुटकी भर लाल कुमकुम, केन्सर के निर्दयी हाथों से अब अहिस्ता आहिस्ता निष्प्राण होने जा रहा है. बस थोड़े ही दिनों में अब शामी के कपोल पर सुहाग का सूर्य सदा के लिए अस्त हो जायेगा. नहीं..... नहीं.... शामी को समझाना होगा कि यह जड़ दकियानूसी रूढ़ि न अपनाये. कुमकुम लगाना बंद न करे, बल्कि मेरी याद मानकर उसे अपने मस्तिष्क पर सदा उदित रखे.

"डैडी अजय मुझे खेलने नहीं देता"— मुन्नी रोते हुए मेरे पास आती है.

"ना डैडी वह मेरा घर तोड़ रही है"— अजय.

मैं एकदम खड़ा हो जाता हूं. मुन्नी को अपने पास खींचता हूं, "मेरी प्यारी मुन्नी है, चलो मैं तुम्हें घर बनाकर देता हूं."

अपनी सलोनी मुन्नी के लिए मैं मिट्टी को थापता हूं. शामी आकर हम दोनों की सहायता करती है. अजय अपना खेल छोड़कर आस-पास की गीली रेत लाकर मेरे पास जमा करता है, मैं उसे आकार देते हुए कंपाउंड बनाता हूं. बाल्टी में दबा-दबाकर रेत भरता हूं और रेत की दीवार पर उस बाल्टी को उल्टा करके कंगारे बनाता हूं. सांचों में ढले हुए कंगारे चारों तरफ खड़े हो जाते हैं. छोटे से फावड़े से मुख्य द्वार बनाता हूं. कटोरी का आकार बनाकर दीवार पर नक्काशी करता हूं. सचमुच ही सुंदर घर तैयार होता है.

शामी उठकर खड़ी होती है.

"चलो, अब घर चलें. समय क्या हुआ पता है? सात बज गये हैं."

वाकई बहुत देर हो गयी थी, पर अजय-मुन्नी वापस घर जाने को तैयार नहीं थे. मैं खुद भी असमंजस में हूं. इतना समय गंवाकर और अनुराग से रेत का जो घर बांधा है, उसे यहां अनाथ छोड़कर जाने से मन कतराता है.

अंत में शामी चिढ़ती है, "अजय, मुन्नी अब सीधी तरह से उठो, नहीं तो मैं अकेली ही चली जाऊंगी".

मैं सबसे पहले उठता हूं.

अजय बाल्टी, फावड़ा और कटोरी उठाता है, "इस घर को यहीं रखकर जाना होगा?" अजय रोनी सूरत बनाकर 'वापसी' स्वीकारता है.

मुन्नी तत्काल उत्तर देती है, "उसमें क्या? तुम बाल्टी वगैरह जो लाये थे वही वापस ले जाने की है. यह मिट्टी तो यहीं की है, उसे कैसे लिया जा सकता है? हमने घर बनाया तो क्या हुआ? इसे यहीं छोड़कर जाना है. सिर्फ लोग कहेंगे कि यह घर सुंदर दिखता है! नहीं डैडी?"

मैं मुन्नी को गले लगाता हूं. सात साल की मुन्नी के मुख से उपनिषद का उपदेश सुनकर मेरे मानस पटल पर जो निराशा के बादल छाये थे, छंट गये.

एक नयी दृष्टि पाकर में वापस चलने लगता हूं.

●

लघुकथा

बैल

सुकेश साहनी

"इसके दिमाग में गोबर भरा है गोबर!" विमला ने मिक्की की किताब को मेज पर पटका और पति को सुनाते हुए पिनपिनायी, "मुझसे और अधिक सिर नहीं खपाया जाता इसके साथ. मिसेज आनंद का बंटी भी तो पांच साल का ही है, उस दिन किट्टी पार्टी में उन्होंने सबके सामने उससे कुछ क्वश्चन पूछे... वह ऐसे पटापट अंग्रेजी बोला कि हम सब देखती रह गयीं. एक अपने बच्चे हैं..."

"मिक्की! इधर आओ."

वह किसी अपराधी की भांति अपने पिता के पास आ खड़ा हुआ.

"हाउ इज फूड गुड फॉर अस? जवाब दो, बोलो!"

"इट मेक्स अस स्ट्रांग, एक्टिव एंड हैल्प्स अस टू...टू...टूऊऊ..."

"क्या टू टू लगा रखी है! एक बार में क्यों नहीं बोलता?" उसने आंखें निकालीं, "एंड हैल्प्स अस टू ग्रो."

"इट मेक्स अस असट्रांग...!" वह रुआंसा हो गया.

"असट्रांग!! यह क्या होता है, बोलो... 'स्ट्रांग'... 'स्ट्रांग'... तुम्हारा ध्यान किधर रहता है... हंय?" उसने मिक्की के कान उमेठ दिये.

"इट मेक्स स्ट्रांग..." उसकी आंखों से आंसू छलक पड़े.

"यू-एस... 'अस' कहां गया. खा गये!" तड़ाक् से एक थप्पड़ उसके गालों पर जड़ता हुआ वह दहाड़ा, "मैं आज तुम्हें छोडूंगा नहीं..."

"फूड स्ट्रांग अस...."

"क्या?" वह मिक्की को बालों से झिंझोड़ते हुए चीखा.

"पापा! प्लीज, मारो नहीं... अभी बताता हूं... बताता हूं... स्ट्रांग... फूड... अस ... इट.... हाउ... इज..." वह फूट-फूटकर रोने लगा. □